भारत छोड़ो आंदोलन : कारण और परिणाम

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन जिसे "अगस्त क्रांति" के नाम से जाना जाता है भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की अंतिम तथा 1857 के बाद बहुत बड़े पैमाने पर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ दूसरी देशव्यापी बगावत थी जिसने ब्रिटिश साम्राज्य के नींव को हिलाकर रख दिया। यह आंदोलन भारतीय जनता की वीरता एवं लड़ाकूपन की अद्वितीय मिसाल पेश करता है। राष्ट्रीय स्तर पर गांधीजी द्वारा कांग्रेस मंच से संचालित यह तीसरा और अंतिम महत्वपूर्ण आंदोलन जहां पहुंच कर गांधीजी ने असहयोग एवं अवज्ञा से आगे बढ़कर "अंग्रेजो भारत छोड़ो" के अंतिम मूल मंत्र का ऐलान कर दिया। यह हमारे स्वतंत्रता संग्राम का वह निर्णायक दौर था जहां पहुंच कर हमारे नेताओं ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि उन्हें स्वतंत्रता से कम कुछ भी स्वीकार्य न होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति की उत्कट आकांक्षा से लैश भारतीय जनता ने स्वीकृत नेताओं की अनुपस्थिति एवं सरकार के पाशविक दमन के बावजूद अपने बलिदान एवं संघर्ष क्षमता का अपूर्व उदाहरण पेश किया। अपने स्वभाव के विपरीत गांधीजी इस बार काफी सख्त नजर आ रहे थे।

महायुद्धकाल में 'भारत छोड़ो' का ऐलान किये जाने की आवश्यकता के प्रश्न पर तत्कालीन राष्ट्रवादी नेताओं के खेमे में भी विभेद था। ब्रिटेन महायुद्ध में प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए फासिस्ट ताकतों के खिलाफ लड़ रहा था। ऐसे में ब्रिटेन के खिलाफ आंदोलन छेड़ना फासिस्ट ताकतों को समर्थन देना होता। इस बात को हमारा तत्कालीन राष्ट्रीय नेतृत्व भी बखूबी जानता था। दूसरी समस्या यह थी कि युद्ध की आड़ लेकर सरकार अपने को सख्त कानूनों से लैश कर लिया था और शांतिपूर्ण राजनीतिक गतिविधियों को भी प्रतिबंधित कर दिया था।

इन समस्याओं के बावजूद भी कांग्रेस ने गांधीजी को आंदोलन चलाने के लिए 14 जुलाई 1942 को अपने कार्य समिति के वर्धा बैठक के दौरान स्वीकृति प्रदान कर दी। वास्तव में इसके पीछे कई कारण थे। 1939 में अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों की इच्छा जाने बिना महायुद्ध में घसीट लिया था, इससे भारतीय क्षुब्ध थे। इसके विरोधस्वरूप जब सात प्रांतों में बनी कांग्रेसी सरकारों ने इस्तीफे दे दिए और गांधी के

नेतृत्व में व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया तो सरकार ने कड़ा रुख अपनाया। 15 मई 1941 तक लगभग 25000 सत्याग्रही बंदी बना लिये गये। इधर ब्रिटिश सरकार भी हताशा के दौर से गुजर रही थी एवं उसपर भारतीय समस्याओं के समाधानार्थ अन्तर्राष्ट्रीय दबाव विशेषत: अमेरिकी एवं चीनी सरकारों के तरफ से भी पड़ रहा था। ब्रिटिश सरकार ने इस परिस्थिति में दमन के बाद सर्वाधिक प्रभावकारी अस्त्र "समझौता" द्वारा इस समस्या के प्रति अपनी सचेतता अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को प्रदर्शित करनी चाही एवं सर स्टैफर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में एक त्रिसदस्यीय प्रतिनिधिमंडल 23 मार्च 1942 को भारत भेजा।

क्रिप्स भारतीय नेताओं को बहला-फुसलाकर युद्ध में उनका सहयोग पाना चाहते थे। अगर उनका प्रयत्न असफल भी हो जाता तो सरकार को फायदा था कि क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सामने भारतीय नेताओं की जिद को प्रकट करने का तथा किसी भी आंदोलन को दमन करने का बहाना मिल जाता। इस प्रकार क्रिप्स मिशन रूपी फिल्म ब्रिटिश सरकार ने शायद फ्लॉप होने के लिए ही बनायी थी। क्रिप्स ने युद्ध समाप्ति के बाद भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य का दर्जा दिये जाने की शर्त पर युद्ध में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने की पेशकश की। युद्ध में इस समय ब्रिटेन की जीत संदिग्ध नजर आ रही थी, इसीलिए गांधीजी ने क्रिप्स के प्रस्तावों को "दिवालिया बैंक के नाम भविष्य की तिथि में भुननेवाला चेक" कहकर खारिज कर दिया तथा क्रिप्स को तुरत उसी समय लंदन वापसी का सुझाव दिया।

युद्धकालीन परिस्थितियों से निबटने के सरकारी तौर-तरीकों ने भी जनता के असंतोष को बढ़ा दिया। जापान की सेना निरंतर आगे बढ़ रही थी जिससे भारतीय प्रदेशों पर खतरा मंडराने लगा था। ब्रिटिश सरकार ने तटीय सुरक्षा के नाम पर "स्कार्चड अर्थनीति" का सहारा लिया जिसके तहत सेना पीछे हटते हुए सारी चीजों को स्वयं इसलिए नष्ट करती जाती है ताकि बढ़ते हुए शत्रु सेना लाभ न उठा सके। इसी नीति के तहत बंगाल एवं उड़ीसा के हजारों छोटे नावों को जापानियों द्वारा उनके संभावित इस्तेमाल को रोकने के लिए सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया तथा नहरों का पानी बहा दिया गया। लोगों की परेशानियों का सरकार ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। साथ ही बर्मा एवं मलाया से जिसप्रकार

Scanned with CamScanner

अंग्रेजों को हटा लिया गया एवं स्थानीय लोगों को उनके भाग्य के सहारे छोड़ दिया गया। उससे भी जनता में हताशा एवं निराशा का संचार बढ़ा। युद्ध के कारण बढ़ती कीमतों एवं आवश्यक वस्तुओं के अभाव से जनता परेशान थी। मकान एवं मोटरगाड़ियों पर भी सेना ने कब्जा कर लिया था। युद्ध में ब्रिटेन की पराजय स्पष्ट दिख रही थी जिससे सरकार के प्रति लोगों का विश्वास काफी कम हो गया था। जनता के निराशा, हताशा एवं मन में बैठे आतंक की भावना को उनके जेहन से निकालना आवश्यक हो गया।

जनता की निराशा को दूर करने की आवश्यकता को गांधीजी ने गम्भीरतापूर्वक लिया। उन्हें भय था कि कहीं ऐसा न हो कि जापानी आक्रमण का लोग विरोध भी न करें। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ब्रिटेन को तुरंत भारत छोड़ देना चाहिए ताकि यहाँ के लोग अपनी रक्षा की जिम्मेवारी खुद ले सकें। उनका मानना था कि ब्रिटेन के भारत छोड़ देने से जापान भारत पर आक्रमण नहीं करेगा और ऐसा हुआ भी तो भारतीय खुद अपनी रक्षा करेंगे, इसीलिए उन्होंने भारत को भाग्य के सहारे छोड़ देने की बात की। उन्होंने कहा कि भारतीयों को सत्ता सौंप देने पर वे खुद अपनी इच्छा से युद्ध में ब्रिटेन का साथ दे सकते हैं। गांधीजी सारी समस्याओं को नजरअंदाज करते हुए आंदोलन चलाने की मंशा पर डटे रहे और यह धमकी दी कि अगर कांग्रेस ने उन्हें आंदोलन शुरू करने की स्वीकृति प्रदान नहीं की तो वे समुद्र की बालू से कांग्रेस से भी बड़ा आंदोलन खड़ा कर देंगे।

आखिरकार कांग्रेस कार्य समिति ने 14 जुलाई 1942 को वर्धा में गांधीजी के संघर्ष के निर्णय को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। अगले महीने सात तारीख को जब अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक (बम्बई) के दौरान इस प्रस्ताव का अनुमोदन होना था तो लोग अपार उत्साह के साथ ग्वालिया टैंक मैदान में मौजूद थे। कांग्रेस द्वारा प्रस्ताव को हरी झंडी दिये जाने को जनता ने अभूतपूर्व उत्साह के साथ स्वागत किया। गांधीजी ने (8 Aug) इसी सभा के दौरान अपने 70 मिनट वाले लम्बे तथा दिव्य भाषण में जनता को 'करो या मरो" (Do or Die) का नारा दिया। उन्होंने साफ तौर पर कहा कि इस बार आजादी से कम किसी भी चीज से समझौता नहीं होगा। अहिंसक रूप से बड़े स्तर पर जनसंघर्ष का आह्वान किया गया। गांधीजी को नेतृत्व

की गिरफ्तारी की भी आशंका थी इसीलिए उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि ऐसा होने पर स्वाधीनता की चाह रखनेवाला प्रत्येक भारतीय स्वयं अपना मार्गदर्शक बने .... अपने आपको स्वाधीन समझे.... केवल जेल जाने से काम नहीं चलेगा।"

भारत सचिव एमरी समझते थे कि जिसका युद्ध न्यायसंगत होता है उसका शस्त्रबल भले ही दोगुना होता हो किंतु जो पहले वार करता है उसका शस्त्रबल तिगुना होता है। वस्तुतः कांग्रेस आंदोलन चला सके इसके पहले ही सरकार ने हमला बोल दिया और 8 अगस्त की रात्रि में ही गांधीजी समेत कई प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। लेकिन सरकार की आशा के विपरीत समूचे देश में जनाक्रोश की लहर दौड़ पड़ी। हर शख्स नेता बन गया और हर चौराहा 'करो या मरो' का दफ्तर।

आंदोलन प्रारम्भिक सप्ताह में शहरी केन्द्रों तक सीमित रहा और इसमें हड़तालें एवं अधिकांश शहरों में सेना एवं पुलिस के साथ झड़पें सम्मिलित थी। बम्बई से शुरू होकर यह कलकत्ता, दिल्ली, पटना, लखनऊ, कानपुर नागपुर और अहमदाबाद तक फैलता गया। आंदोलन के इस चरण में विद्यार्थियों सहित शहरी मध्यमवर्ग की भागीदारी अत्यंत प्रमुख थी। मध्य अगस्त से आंदोलन सुदूर गाँवों तक फैलता गया। उत्साही विद्यार्थियों ने गाँवों में पहुंचकर संचार साधनों को नष्ट कराया एवं विदेशी सत्ता के खिलाफ किसान आंदोलन का नेतृत्व किया। अब उत्तर एवं पश्चिमी बिहार, पूर्वी संयुक्त प्रांत, मिदनापुर महाराष्ट्र, कर्नाटक और उड़ीसा के कुछ हिस्से आंदोलन के मुख्य केन्द्र हो गये थे। इनमें कई स्थानों पर राष्ट्रीय सरकारें भी बनी। Sept. 1942 के मध्य से कहीं-2 शिक्षित युवावर्ग आतंकवादी गतिविधियों में शरीक होने लगा। विशेष रूप से संचार साधन, पुलिस तथा सेना के केन्द्र इनकी गतिविधियों के शिकार होते गये। ये कभी-2 छापामार युद्ध पर भी उतारू हो जाते थे जैसा कि उत्तरी बिहार एवं नेपाल की सीमा पर जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुआ था। मिदनापुर के तमलुक, महाराष्ट्र के सतारा एवं उड़ीसा के तलचर में गुप्तरूप से विद्रोहियों ने समानतर सरकारें भी बना ली थी।

धीरे-धीरे आंदोलन सरकार के पाशविक दमन एवं अत्याचार के चलते शिथिल पड़ता चला गया। सरकारी आँकड़ों

के अनुसार 1943 के अंत तक 91,836 लोगों को गिरफ्तार किया गया जिसमें सर्वाधिक गिरफ्तारियाँ बम्बई, संयुक्त प्रांत तथा बिहार में हुई थी। 208 पुलिस चौकियों, 332 रेलवे स्टेशन तथा 945 डाकघर या तो नष्ट या गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त कर दिये गये। जनभागीदारी की दृष्टि से बिहार सबसे आगे था जबकि बम्बई आतंकवादी गतिविधियों में सर्वाधिक आगे था। प्रत्युत्तर में ब्रिटिश सरकार ने क्रूर एवं पाशविक दमन का नमूना पेश किया। बलात् अमानवीय उत्पीड़न तथा पुलिस द्वारा गाँवों को जलाना आम बात थी। युद्ध की आड़ में तामलुक, मिदनापुर, नादिया, तलचर भागलपुर, मुंगेर तथा पटना में आंदोलनकर्मियों पर बंदूकों से गोलियाँ दागी गई। यह दमन 1857 की क्रांति की याद को ताजा करता है अंतर सिर्फ इतना था कि अंग्रेजों के हाथों में आधुनिक सैन्य साधन मौजूद थे जबकि भारतीय जनता लगभग पूर्ण रूप से निहत्थी थी।

सामाजिक भागीदारी के दृष्टिकोण से आंदोलन में मध्यमवर्गीय विद्यार्थियों, किसानों एवं उच्च जाति वर्गों का प्रतिशत उत्साहवर्द्धक रहा। श्रमिकों एवं उद्योगपतियों की भागीदारी निश्चित रूप से साम्यवादी आह्वान के चलते अच्छी नहीं कही जा सकती। मुस्लिम लीग भी आंदोलन से पृथक रही। यही कारण है कि कांग्रेस के दक्षिणपंथी एवं समाजवादी नेता जहाँ अपने देशभक्तिपूर्ण आत्मबलिदान के गौरव से मंडित हो रहे थे वहीं राष्ट्रवादी जनमत के बहुत बड़े भाग की दृष्टि में 'साम्यवादी' अंग्रेजों के सहयोगी और देशद्रोही करार दिये गये। हिन्दु महासभा तथा RSS इस आंदोलन से अलग रहे वहीं भीमराव अम्बेडकर ने भी आंदोलन का समर्थन नहीं किया।

यद्यपि भारत छोड़ो आंदोलन से तुरंत स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सका तथा अंग्रेजों के क्रूर एवं पाशविक दमन के कारण विफल हो गया लेकिन इसका दूरगामी परिणाम अत्यंत सुखदायी रहा। इसने स्वतंत्रता की भूमिका तैयार कर दी। ब्रिटिश सरकार को देश के बदले मिजाज का एहसास हो गया तभी तो वेवेल जैसे साम्राज्यवादी को युद्ध समाप्ति के पहले ही समझौते की पहल करनी पड़ी। युद्ध के बाद के कई वर्ष सत्ता हस्तांतरण के तौर-तरीके निश्चित करने में लगे। स्पष्टतः यह भारत-छोड़ो आंदोलन का ही दूरगामी परिणाम था।

—X—